IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, July 2024

''समसामयिक व्यवस्था में परसाई–रचनावली की सार्थकता''

पूनम पाठक
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अ. प्र. सिंह वि. वि., रीवा

लेखन का क्षेत्र भाषा का ही क्षेत्र होता है। लेखक जो कुछ भी करना चाहता है, भाषा के अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा साधन नहीं है। वह मात्र शब्द प्रयोग नहीं करता, शब्दों द्वारा एक वस्तु–संसार भी निर्मित करता है।[1] भाषा हमारी सोच और अनुभव को संभव बनाती है, उसे अनुशासित भी करती है। प्रत्येक युग में प्रत्येक लेखक के लिए अपनी एक निजी भाषा खोजनी होती है। सही अर्थो में भाषा की खोज अर्थो की खोज बन जाती है। भाषा मानवीय व्यवहार की एक अनिवार्य गतिशील प्रक्रिया है, केवल शब्दों का समुच्चय मात्र नहीं। इतिहास और समय की गतिशीलता के साथ–साथ हमारी चेतना और कलात्मक अनुभव की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता है, समय और चेतना के साथ जुड़े इस परिवर्तन में समूचा मानवीय भाषिक व्यवहार ही बदल जाता है, एक अर्थ में भाषा अपना मिजाज और मुहावरा ही बदल देती है। भाषा और समाज की गतिशीलता सचमुच एक आश्चर्जनक तथ्य है किन्तु साहित्यिक इतिहास के ठोस साक्ष्य इसे पुष्ट करते है।[2] ठीक इसी अर्थ में भाषा को समूचे समाज की सम्पत्ति कहा गया है। निराला ने कहा था कि भाषा भावों की अनुगामिनी है भाषा बहती हुई और प्रकाशशील होती है। काडवेल ने अपनी कृति रोमांस एण्ड रियलिज्म में जीवन अनुभव भाषा और अभिव्यक्ति के स्वरूप का अध्ययन करते हुए अपना यही निष्कर्ष दिया है कि साहित्य की परम्परा भाषा की परम्पराएँ नहीं बल्कि सामाजिक परम्पराएँ होती है।[3] हर रचनाकार अपने समय की भाषा खोजता–यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये सहज और विश्वसनीय भाषा का निर्माण करना होता है– भाषा और अनुभव का द्वन्द्व लेखक के मन बराबर सक्रिय होता है तभी वह भाषा के माध्यम से अपने संवेदन को एक विशिष्ट अनुभव का रूप देने में सफल हो पाता है। लेकिन दुखद हादसा है। दरअसल जरूरत से ज्यादा साहित्यिक सरोकारों ने आज के लेखकों को जिस तरह की भाषा और कतिपय चुनिंदा विषय दे दिये हैं वे जीवन के व्यापक अनुभव का बहुत ही छोटा हिस्सा है। इतने कम लोगों तक संवाद की स्थिति आज के लेखक की है कि मात्र एक छोटा सा वर्ग जिसके साहित्यिक सांस्कृतिक सरोकार है, उन तक भी पूरे रूप में वह पहुँचता नहीं फलतः कोई जीवंत बहस और उत्तेजक किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सार्थक बातचीत के माहौल का सर्वथा अभाव सा है।

कहा जा सकता है कि साहित्यकारों का भी एक अभिन्य वर्ग बन गया है जिनके बीच किसी कृति के बारे में थोड़ी बहुत बातचीत संभव नहीं हो पाती–किन्तु सिर्फ इस वर्ग के घेरे के भीतर किसी महत्वपूर्ण रचना का कैद हो जाना एक तरह से रचना की भी असफलता है–ऐसे समय और हालात् में परसाई की रचनाएँ महत्वपूर्ण ढंग से साहित्कारों के अभिन्य वर्ग का दायरा तोड़ती हुई सम्प्रेषण की सीमा को सार्थक ढंग से फैलती है। परसाई की रचनाएँ साहित्य की अभिन्य रूचि से बनी भाषा के बिल्कुल विपरीत लोक तत्वों से अपना आधार ग्रहण करती है। इसलिये उनके सम्बोधन का चरित्र इतना सहज और आत्मीय बन सका है। एक रचना का उदाहरण इस तरह से है–यह मिसफिट्स का युग है। भाई जिसे जुआड़खाना चलाना चाहिए वह मंत्री है जिसे डाकू होना चाहिए वह पुलिस अफसर है जिसे दलाल होना चाहिए वह प्रोफेसर है, जिसे जेल में होना चाहिए वह मजिस्ट्रेट

[1] परसाई रचनावली, खण्ड–4, पृ0 378
[2] हरिशंकर परसाई की दुनियॉ, डॉ0 मनोहर देवलिया, पृ0 02
[3] आंखन देखी, पृ0 306

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, July 2024

है जिसे कथावाचक होना चाहिए वह उपकुलपति है। जिसे जहाँ होना चाहिए, वह ठीक वही है।[4] ऐसे जटिल भारतीय जीवन के समकालीन प्रश्नों से उनकी रचनाएँ मुठभेड़ करती है और भारतीय मन की तकलीफ को उसकी अपनी भाषा में पकड़ती है।

परसाई के व्यंग्य लेखन में भाषा का जो स्वरूप व्यवहृत हुआ है, वह ध्वनि, रूप और शब्द के धरातल पर बोली की ताकत और ताजगी वाला रूप है। परसाई देख–परख कर लिखते है, सोच–समझकर लिखते है। उन्होंने जो कुछ लिखा है उनसे लिखा नहीं गया वे शब्द चयन में से उठाते है बेचैनी पैदा कर देने वाला भाव पैदा कर देते है, और इस तरह शब्द में जो भाव उपजता है वह एक बिरली ध्वनि का बोध कराता है। इसी से उनके व्यंग्य को निरक्षर भी बैठकर दोहरा लेता है। बिना लिहाज किये प्रहार करने की जब–जब जरूरत होती है, तब–तब ध्वनि, भाव और शब्द सीधे बोली से ही उठाने पड़ते है। बोली सीधे–सीधे जन से जुड़ी है। बोली सामान्य से आमूँ–सामू बतिया लेती है। परसाई के व्यंग्य लेखन में अहम् भूमिका रखती है।[5] परसाई की भाषा बड़ी सादी और उसका लहजा भी सादा होता है लेकिन लक्ष्य हमेशा अचूक रहता है। अपने तर्क की पुष्टि के लिये कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

नशे के मामले में हम बहुत ऊँचे है। कई नशे है धर्म का, जाति का, नस्ल का, अध्यात्म का। दो नशे खास है हीनता का नशा और उच्चता का नशा।[6] परसाई ने यहाँ वर्गो की स्थिति को उजागर किया है। परसाई का लेखन समाज की एक–एक पर्त को उघाड़ता है उन्हें जहाँ भी विसंगति दिखी, वहाँ उन्होंने व्यंग्य की चोट की है। चोट करने के लिए जब–जब उन्होंने आक्रमण रूख अपनाया है तब–तब भाषा समर्थ हथियार धारदार हुआ है।[7] कहना न होगा कि व्यंग्कार में व्यंग्य उत्पन्न करने की सफलता का एक बड़ा राज उसकी भाषा में हुआ है। उनकी भाषा अभिजात्य संस्कारों से मुक्त और सर्वथा जानी–पहचानी भाषा है। वह सरल और धारदार है उसमें कलात्मक अभिव्यक्ति की अद्भूत क्षमता है। व्यंग्कार के लिए जीवन से गहरे सरोकार के साथ–साथ भाषा की बारीकियों की पहचान रखना बहुत जरूरी होता है। भाषा में हुए संस्कारों के छल को समझना भी एक बेहद जरूरी मुद्दा है। इसे एक तरह कहा जा सकता है कि सामाजिक छल के कारण भाषा की उन छलों से प्रभावित हो जाती है, परसाई इसके प्रति सावधान रहते है। उनकी भाषा का एक अन्य उदाहरण इस तरह से है।

अंग्रेजी में मरे को 'दी लेट' कहते है हम उसे स्वर्गीय या दिवंगत कह देते हैं, धंध उजाड़कर मरने वाले बाप को लड़का मर गये कह देता है विश्वासों और संस्कारों का छल भाषा में ही आ जाता है।[8] परसाई की व्यंग्य क्षमता दिनों–दिन धारदार हुई है स्वार्थ को सर्वोपरि करके जब पगडंडियाँ बनाई गई, नौकरशाही के मजबूत शिकते जो जब गणतन्त्र ठिठुरता हुआ दिखा, पेंशन की प्रतिक्षा में जब–जब भोलाराम का जीव विकल हुआ कालेज जैसे शिक्षा केन्द्र जब–जब दुकानदारी पर उतरे थो प्रापर चेनल की दृष्टि ने जब–जब प्रतिभा को दवोचा संस्कारों और शास्त्रों की चालों में जब–जब मतलब सर्वोपरि हुआ, यथार्थ को जब भी परेशान किया गया, तब–तब परसाई में अकेले शीर्षक चोट करने में समर्थ हो गए विश्लेषण तो दूर की बात है।[9] इसी क्रम में कन्धे श्रवण कुमार न्याय का दरवाजा, बिना टिकिट का मुसाफिर, भारत को चाहिए जादूग और साधू कर कमल हो गये, परमात्मा का लोटा राम की लुगाई और गरीब की लुगाई वैष्णव की फिसलन, गुढ़ की चाय वह जो आदमी है न सज्जन दुर्जन

[4] परसाई रचनावली, खण्ड–3, पृ0 205
[5] परसाई रचनावली, खण्ड–3, पृ0 121
[6] हरिशंकर परसाई की दुनियॉ, डॉ0 मनोहर देवलिया, पृ0 83
[7] हरिशंकर परसाई की दुनियॉ, डॉ0 मनोहर देवलिया, पृ0 84
[8] आंखन देखी, सं0 प्रो0 कमलाप्रसाद, पृ0 247
[9] हरिशंकर परसाढ की दुनियॉ, डॉ0 मनोहर देवनिया, पृ0 85

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, July 2024

और कांग्रसजन आदि ऐसे समर्थ शीर्षक है जो कि व्यक्तिवाचक की परिधि को लांघकर के जातिवाचक हो गये। जहाँ भाव भी विश्लेषण की प्रतिक्षा नहीं करता।

साहित्य पीढ़ियों तक प्रतिष्ठा के आस–पास रहा है। इसकी ही सुविधा वितरित करने वालों के आस–पास जो भी शब्द होते थे वे ही लेखन के क्षेत्र में काम आते थे। भाषा पर विचार करने का सीधा अर्थ होता है शब्द पर विचार करना शब्द अर्थ को ढ़ोता है उन्हें वाणी देता है और अर्थ ही अभीष्ट होता है। शब्द बोली के घर जितना सुखी रहता हे उतना भाषा क घर नहीं। अपनी बात बेखटके और सही ठौर ठिकाने पर पहुँचने के लिए जीवंत लेखन बोली घर से ही शब्द उठाता है।[10] शब्दों की इसी अर्थ व्याप्ति में सज्जन, दुर्जन, कांग्रसजन के रूप कहलवाने वाले भैया साहब हो या अजीब और हास्यास्पद दशा में जीने वाले साथी तेजराम आग हो या टुटपुंतिया प्रसाद जी हो, या भीषण दरिद्रता में जीन वाले गरीबमल करोड़पति कहलाते हों, या सम्पन्नता में जी रहे मायाराम गरीब कहलाते हों और चाहे नित्य–सत्य को झूठ में बदल देने वाले झूठनारायण जी हो। या फिर मर्कट कुमार, उलूक कुमार कुफ्तलाल, जालिमसिंह, राखड़सिंह, करेलामुखी–आदि नाम होने के बावजूद भी अपने आस–पास का समूचा परिवेश लपेटे हुए है।

परसाई की भाषा सीधी–सादी होकर बेहद मारक है। उनके संदर्भ इतने गहरे और जिंदगी से जुड़े होते है कि साधारण और सरल भाषा स्वयं ही अर्थ मत हो जाती है।

व्यंग्यकार का अपने लेखकीय कर्म के प्रति ईमानदार होना ही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। इस रूप में परसाई जी निहायत ईमानदार साबित हुए हैं। उन्होंने आज की सामाजिक और आर्थिक विषमता, राजनैतिक शोषण एवं सांस्कृतिक अधः पतन का खुलकर विरोध किया है। फिर क्या किया जाय? क्योंकि जमाने ने ही अपने आपको कुछ इस कदर से बदला है कि कोई भी ईमानदार लेखक अपनी ऑख मूदंकर नहीं रख सकता।

समाज का एक तबका ऐसा है जो वैभव विलास से भरी हुई ऊँची–ऊँची अट्टालिकाओं में निवास करता है। इनमें रहने वाले लोग दो नम्बर का धन्धा करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार सरकार उन्हें एक नम्बर का धन्धा करने नहीं देती। टैक्स की चोरियॉ और तरह–तरह के लाइसेन्स, का लाघन इस देश में समानान्तर अर्थव्यवस्था बना हुआ है और यह स्पष्ट है कि कालेधन की अर्थव्यवस्था की छांव में जीवन कभी संतुलित नहीं रह सकता।

समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जिसने हमेशा दुःखों के साये में जिन्दगी को गुजारा है। उसकी जिन्दगी में कभी सबेरा आया ही नहीं। उसे शुरू से ही केवल सपने बांटे जाते रहे और वह उसी से बहलता रहा। हमारे समाज में समाजवाद एक नारा है जिसे हर समाजवादी चिल्ला देता है। यद्यपि वह उसे इस धरती पर उतारने का कायल नहीं है। क्योंकि उसे भली प्रकार से यह मालूम है कि नारों से जिन्दगी नहीं बदलती। यदि नारे लगाने से ही हिन्दुस्तान की किस्मत बदल जाती तो फिर आज दाने–दाने को यह देश मोहताज क्यों होता? हमारे समाज में एक वर्ग ऐसा भी है 'गरीबी हटाओं' का नारा लगाता है लेकिन वह कभी नहीं चाहता की इस देश से गरीबी हटे। इसलिए कि गरीबी ही वह सीढ़ी है जिस पर चढ़कर लोग ऊँचे आसन को प्राप्त करते हैं।

देश की प्रगति के नाम पर हजारों खद्दरधारी पदलोलुपता के कारण देश को खोखला करने में लगा गये। जिन्होंने आजादी की लड़ाई के दौरान एकाध बार जेल जाने की औपचारिकता पूरी की थी वे ब्याज सहित पारिश्रमिक मांगने लगें। 'लंका विजय के बाद' क्षेपक–कथा परसाई जी ने युगीन तथ्य को पौराणिक कथा से समन्वित करके प्रस्तुत किया हैं उक्त प्रसंग आज

[10] आंखन देखी, पृ0 40

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, July 2024

की युगीन परिस्थितियों में व्यंग्य के रूप में लिखा– ''इस देश की उन्नति करनी है। अतएव शासन कार्य योग्य व्यक्तियों को ही सौंपा जायेगा। तुम लोग सभ्य नागरिकों की भांति श्रम करके जीविकोपार्जन करो और प्रजा के सामने आदर्श उपस्थित करें।''[11]

राजनीति में घूसखोरी पर परसाई जी ने काफी तीखा लिखा है। आजादी के बाद जो विसंगतियॉ हमारे सामने आई परसाई जी उन पर जी खोलकर लिख सकते थे और उन्होंने लिखा भी। लोगों ने सोचा था कि आजादी के बाद नयी रोशनी होगी, नयी चेतना, नयी स्फुर्ति मिलेगी, पर वह आजादी कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथ चली गई। जिन्दगी यहॉ जीवित है वहॉ अभावों का गहन कोहरा छाया हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों – श्याम सुन्दर घोष, सत्साहित्य प्रकशन, नई दिल्ली, 1957।
2. हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना – कु0 आभा भट्ट, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1994।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली नवीन संस्करण 2005।
4. हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व और कृतित्व – मनोहर देवलिया, साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1986।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वाराणसी, सत्रहवॉ पु0मु0 संवत् 2029।
6. हिन्दी साहित्य में हास्य रस – बरसाने लाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1957

[11] जैसे उनके दिन फिरे, हरिशंकर परसाई, पृ0 51–52